North Asian International Research Journal of Multidisciplinary

CIF IMPACT FACTOR:4.465

ISSN: 2454-2326 Vol. 3, Issue-9 September-2017

प्राचीन भारत में भू–राजस्व प्रशासनः एक अवलोकन

डॉ. मनोज कुमार झा*

*सहायक प्रोफेसर, ल.प्रि.रा.ल. संस्कृत महाविद्यालय, समौल पोस्ट– बिरसाइर, जिला–मधुबनी

भूमि, प्राचीन काल से ही आय सृजन का मुख्य स्रोत रही है। राज्य उन लोगों पर अपनी सत्ता (अधिकार) प्रकट करने के लिए जिन पर वह शासन करता था, और राज्य की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए भू–राजस्व (मालगुजारी) एकत्र करता था। इस संदर्भ में, भू–राजस्व का अभिप्राय भूमि के प्रयोग के लिए इस पर लगान (राजस्व) और उपज से है। प्राचीन और मध्यकाल में और औपनिवेशिक भारत के कई दशकों में भी भू–राजस्व सरकारी आय का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्रोत था। प्रस्तुत आलेख में भू–राजस्व की अवधारणा, भू–स्वामित्व, सहित भू–राजस्व प्रशासन को व्याख्यित करने का प्रयास किया गया है। संदर्भित काल अवधि–प्राचीन काल रही और परिप्रेक्ष्य भारतीय रहा है।

भू–राजस्व प्रशासन की अवधारणा

सामान्य तौर पर भू–राजस्व का अर्थ भूमि की उपज अर्थात् पैदावार पर करों की उगाही से होता है। एक सामान्य कथन अच्छी तरह स्वीकार किया जाता है कि राजा आय अथवा यदि धार्मिक पुण्यों पर आधारित एक अंश का अधिकारी होता था। राज्य का यह भाग ही राजस्व था जिसे जिंस (वस्तु) के रूप में लिया जाता था। राज्य का यह अंश अथवा भूमिकर स्थायी रूप से निश्चित नहीं था। यह राज्य के वित्त की आवश्यकताओं के अनुसार बदलता रहता था। तथापि, गौतम ने करों की एक लंबी सूची का उल्लेख किया है अर्थात् कृषि उपज का छठा, आठवां अथवा दसवां भाग, जिनमें भिन्नता संभवतया भूमि की गुणवत्ता में अंतर के कारण होती थीः पशुधन और स्वर्ण का पांचवां भाग, तिजारती माल का बारहवां भाग तथा कदमूलों, फलों, फूलों, औषधीय जड़ी–बूटियों, शहद, मांस, घास और जलावन का छठा भाग।

धर्मसूत्र में उल्लेख मिलता है कि राजा का सर्वोच्च कर्तव्य है कि वह जनता की रक्षा करे और वह जाति और व्यवस्था के नियमों को कायम रखे। इस प्रकार, राजा का प्रभुत्व और अधिकार क्षेत्र उसकी प्रजा के कार्यकलापों तक विस्तीर्ण होता था। प्रशासन चलाने के लिए अधिकारियों की एक नियमित अधिश्रेणी नियुक्त करना राजा का ही कर्तव्य होता था। करों का एकत्रण प्रशासन की सर्वाधिक

महत्त्वपूर्ण साखाओं में एक होता था। धर्मसूत्र में यह स्पष्ट नहीं है कि वे अधिकारी जो नगर और गांवों की रक्षा करते थे, वे ही कर भी एकत्र करते थे अथवा इस कार्य के लिए विशेष तौर पर नियुक्त किए गए अधिकारी होते थे। परंतु प्रत्येक स्थिति में कर–योग्य वस्तुओं की लंबी सूची प्रशासनिक संगठन की एक विकसित अवस्था दर्शाती है। प्राचीन भारत का भू–राजस्व व्यवस्था से संबंधित साहित्य राजस्व अधिकारियों की दो प्रमुख शाखाओं का उल्लेख करता है। इनमें से एक राजसी अंश (राज शुल्क) के संग्रह के लिए और दूसरा उपहार लाने के लिए होता था।

प्राचीन भारत में भू–राजस्व प्रशासन

''राजा अपनी प्रजा के कल्याण के लिए ही उनसे कर एकत्र करता था, जैसे सूर्य पृथ्वी से आर्द्रता (नमी) ग्रहण करता है और कई हजार गुना इसे वापस दे देता है''।

कालिदास रघुवंश में राजा दिलीप की प्रशंसा करते हुए

प्राचीन भारत में भू–राजस्व अर्थात् लगान (राजस्व) का मुख्य स्रोत था जो कि राज्य द्वारा उपार्जित किया जाता था। प्रशासन के खर्चो का भुगतान करने के लिए प्राचीन काल में कराधान या करारोपण की व्यापक प्रणाली प्रचलित थी। मनु के अनुसार, ''भूमि उसकी है जो वन साफ करता है, और वन्य जीवन उसके है जिसके पास तीर है''। तथांपि, सहमति पर कराधान स्थापित करने के लिए इस विचार का अनुसरण नहीं किया जाता है। एक उक्ति है कि ''बिना संरक्षाण के कोई कराधान नहीं''। वह राजा जो कर तो लगाता है परंतु संरक्षाण प्रदान नहीं कर सकता है, वह अपने लोगों अर्थात् प्रजा का विरोधी बन जाता है'' और नरक जाता है।

भूस्वामित्वः निजी या राजकीय–मतैक्य नहीं

प्राचीन साहित्य एवं पुरातत्त्वलेख अभिलेखों के अनुसार, भूस्वामित्व के बारे में विद्वानों ने विरोधाभासी निर्णय निकाले हैं। मनुस्मृति के एक पद में उल्लिखित है कि जीवन में गड़ा धन राजा का होता है क्योंकि वह ही जमीन का स्वामी होता है। इससे यह पता लगता है कि सारी भूमि राज्य की ही होती है' जिसमें कृषि–योगय भूमि भी शामिल है। इसी प्रकार, डायडोरस ने लिखा है कि भारत में जमीन राजा की ही होती है तथा किसी सामान्य व्यक्ति को इसके स्वामित्व (मालिकाना हक) का अधिकार नहीं है। लेकिन कुछ अन्य विद्वान मनुस्मृति के एक अन्य अनुच्छेद के आधार पर इस निर्णय पर पहुँचे है कि भूमि पर निजी स्वामित्व का अस्तित्व था। इस अनुच्छेद के अनुसार, ''जमीन का मालिकाना हक उसका होता है जो जंगल से पेड़ साफ करता है तथा जंगली जानवर उसके होते हैं जिसके पास तीर होता है''। इस विषय पर पूर्वमिमांसा में हमे सुनिश्चित प्रसंग मिलता है जो बताता है कि राजा किसी भी सामान्य व्यक्ति की जमीन

हस्तांतरित नहीं कर सकता है, तब भी नहीं जबकि कुछ यज्ञों के अंत में राजा से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दे। तदनुसार, नारद बताते है कि यह बहुत अन्यायपूर्ण होगा कि यदि राजा घरों एवं जमीनों के मालिकाना हक के संबंध में हस्तक्षेप करता है, क्योंकि इससे अत्यधिक अराजकता फैल जाएगी। अर्थशास्त्र भी राजा तथा निजी भूमि के बारे में स्पष्ट रूप से भेद करता है।

भूमि के निजी भू–स्वामित्व संबंधी धारणा ऋग्वैदिक काल में भी विद्यमान थी। इस तरह के प्रमाण मौजूद हे कि कृषि–योग्य एवं आवास भूमि या तो किसी व्यक्ति विशेष की होती थी या फिर किसी परिवार की। चारागाह होना शायद आम बात थी। वास्तव में, प्राचीन साहित्य में हमे जमीन के मालिकाना हक के संबंध में विरोधाभासी प्रसंग मिलते है। अतः किसी सुनिश्चित निर्णय पर पहुंचना बहुत मुश्किल है। हमें जमीन के व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक के साथ–साथ राजकीय स्वामित्व के प्रसंग भी मिलते हैं। संभवतः देश के विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग प्रणालियां मौजूद थी।

जमीन के मालिकाना हक के अधिकार की प्रभाविता जमीन को उपहार में देने, उसे विक्रय करने तथा गिरबी रखने के अधिकार पर निर्भर करती है। प्राचीन विधि साहित्य में जमीन के स्वत्व–अंतरण हेतु किसी व्यक्ति के अधिकार के ही प्रसंग मौजूद नहीं है वरन् काफी इस तरह के अभिलेख भी है जो यह बताते है कि राजा, समुदाय तथा गैर–सरकारी व्यक्ति द्वारा जमीन को उपहार में दिया गया। ज्यादातर जमीन उपहार में ही दी गई थी। हमें जमीन के खरीदने तथा विक्रय के बारे में ज्यादा प्रसंग नहीं मिलते हैं। यद्यपि, अर्थशास्त्र में यह उल्लिखित है कि जमीन के विक्रय के संबंध में खरीददार के चुनाव में वरीयता प्रणाली मौजूद थी। इस वरीयता सूची में स्वजन, पड़ोसी तथा धनवान व्यक्ति शामिल होते थे। ''लोग अपनी जमीन को उपहार में देने तथा गिरवी रखने के स्वतंत्र थे। हमे जमीन के धार्मिक उद्देश्यों के अलावा विक्रय एवं स्थानांतरण के ज्यादा रिकार्ड नहीं मिलते हैं। ज्यादातर शासक अथवा गैर–सरकारी व्यक्ति ब्राह्मणों को अथवा मन्दिरों को अनुदान देते थे। लेकिन इसका अर्थ यह नही कि जमीन वास्तविक रूप से दान के्राही के हवाले कर दी जाती थी, इसका सामान्य अर्थ था कि राज्य को नकद या वस्तु के रूप में दिए जाने वाले कर दान ग्राही को चुकाए जाने हैं। इस तरह के भी कई उदाहरण हैं जो यह दर्शाते हैं कि दान ग्राही को पूर्ण स्वामित्व संबंधी अधिकार भी हस्तांरित कर दिए गए थे। इस तरह ध्रुवसेन प्रथम जो कि वलाभी का राजा था, ने 360 पादवर्त जमीन अपने राज्य के एक मंदिर को प्रदान की। यह जमीन सान्निहित अर्थात् एक जगह मौजूद नहीं थी तथा इसके बीच–बीच में गैर–सरकारी व्यक्तियों की जमीनें मौजूद थी। इसका अर्थ यह निकलता कि कुछ जमीन गैर–सरकारी व्यक्तियों अथवा समुदाय के स्वामित्व वाली होती थी जबकि कुछ जमीन राज्य के स्वामित्व वाली होती थी। राज्य की जमीन 'राज्यवस्तु' कहलाती थी। राज्य को इसका स्वामित्व उत्तराधिकारी के न होने की वजह से अथवा भूमि कर की अदाएगी न किए जाने से प्राप्त होता था। जब दान गाही को वास्तविक रूप से जमीन हस्तानांतरित होती थी (राजस्व की बजाय) तो यह ज्ञात नहीं है कि इस जमीन पर खेती कैसे की जानी थी। संभवतया फिर यह शिकमी–काश्तकार को दे दी जाती थी अथवा इस पर किराए में मजदूरों से खेती करवायी जाती थी। यह भी स्पष्ट नहीं है कि यह जमीन बेमियादी रूप से प्रदान की जाती थी अथवा अन्यथा किया जाता था।

संभवतः यह अनुदान बेमियादी रूप से ही दी जाती थी, लेकिन दानग्राही को स्वत्व–अंतरण अथवा लगान–मुक्त भूमि के स्थायी धर्मदाय का कोई अधिकार नहीं होता था।

अल्टेकर के अनुसार, हमारे पास यह दर्शाने के निर्णायक प्रमाण है कि उत्तर–बौद्ध काल में कृषि–योग्य भूमि का स्वामित्व गैर–सरकारी व्यक्तियों के पास होता था, राज्य इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता था, सिवाय इसके कि जब वे भू–कर अदा न करें। औसत पैदा करने वाले से जो वसूला जाता था वह जमीन का किराया था न कि जमीन का कर। (अल्टेकर,1944)

प्राचीन भारत में जमीन के स्वामित्व से संबंधित एक अन्य प्रश्न है कि लोग जमीन के स्वामित्व का अधिकार राजा की मर्जी पर रखते थे अथवा यह सामान्य रूप से ही था। विद्वानों का इस पर मतैक्य नहीं हैं मिलिंदपन्हा का एक अनुच्छेद स्पष्ट बताता है कि सभी नगर बन्दरगाह, खाने इत्यादि जो भी पृथ्वी पर विद्यमान हैं, उन पर राजा का स्वामित्व है। मनुस्मृति भी इससे सहमत प्रतीत होती लगती है, जो बताती है कि राजा ही भूमि का अधिपति होता है। हालांकि कुछ विद्वानों ने तक दिए है कि मनु का यह दृष्टिकोण इस सिद्धांत के खिलाफ जाता है कि भू–स्वामित्व का अधिकार स्पष्ट रूप से पहले वाले को ही जाता है लेकिन प्रोफेसर आदित्य को मनु के इन दो दृष्टिकोण में कोई विरोधाभास नहीं नजर आता है। उनके अनुसार, भूमि का निजी स्वामित्व कभी भी पूर्णरूपेण अधिकार नहीं रहा है। सैद्धांतिक रूप से चाहे कोई भी स्थिति रही हो, राज्य का इस मामले में फैसला अंतिम होता था।

रैयत वारी से मिलती–जुलती भू–राजस्व प्रशासन प्रणाली

प्राचीन भारत में प्रचलित भू–राजस्व प्रणाली अब लोकप्रिय रूप से जानी जाने वाली रैयतवारी से मिलती–जुलती है। इस प्रणाली में किसान व्यक्तिगत रूप से स्वयं ही खेती करते हैं जो गांव के कारीगरों का ही सामान्य रूप से सेवाएं लेते हैं और इस प्रकार से राज्य को गांव को माध्यम से भू–राजस्व चुकाते है। दो प्रमुख सरकारी अधिकारी जिनका जिक्र आता है, वे थे भागधुक (राजकीय अंश संग्रहक) एवं समाहर्ता (कर, उपहार या शुल्क लाने वाला)। प्रथम अधिकारी कर तथा शुल्क जो कि अधिकतर वस्तु के रूप में होते थे, एकत्रित करता था, तथा दूसरा उनको राजकीय अन्नागार तथा राजकोष में इकट्ठा करता था।

राज्य फसल का एक हिस्सा लेता था, इसकी मात्रा समय–समय पर अलग–अलग होती थी। कराधान प्रतिशतता आठ से तैंतीस प्रतिशत तक होती थी। इसमें उतार–चढ़ाव जमीन की गुणात्मकता पर ही निर्भर नहीं करता था बल्कि विभिन्न समय पर राजाओं के द्वारा वसूली जाने वाली दर पर भी निर्भर करता था जो अपनी आवश्यकताओं के अनुसार दरों में परिवर्तन करते रहते थे। सामान्य प्रक्रिया यह थी कि जमीन की पैदावार का एक–बटा–छह हिस्सा पर के रूप में वसूला जाए। यद्यपि वे राज्य जो साम्राज्यवादी नीतियों

का पालन करते थे तथा बढ़–चढ़कर फौजी अभियानों पर जाया करते थे, अधिक कर वसूलते थे। उदाहरण के लिए, अर्थशास्त्र एवं ग्रीक लेखकों के अनुसार, मौर्य राजागण कृषि आय पर 25 प्रतिशत तक कर वसूल किया करते थे।

यह निश्चित तौर से नही कहा जा सकता कि समय–समय पर वसूला जाने वाले भू–कर की प्रतिशतता का आधाार सकल उपज होता था अथवा वास्तविक उपज। जातक साहित्य के अनुसार, यह सकल उपज के आधार पर वसूला जाता था। तथापि, यह विश्वास करना मुश्किल है कि इतने बड़े हिस्से पर दावेदारी करते समय सरकार कृषि पर आने वाली लागत पर कुछ रियायत न देती हो। राजस्व प्रायः वस्तु के रूप में दिया जाता था। राज्य द्वारा इस तरह से एकत्र राजस्व देश के विभिन्न भागों में स्थित अन्य–भंडारों में जमा कर दिया जाता था जहां से फिर इसे विक्रय कर दिया जाता था। लेकिन बाद के समय में नकद के रूप में राजस्व एकत्र करने की विधि भी शुरू हो गयी थी यद्यपि इसको बड़े सीमित पैमाने पर शुरू किया गया था।

परिवर्तनशीलता भू–कर

राज्य का हिस्सा अथवा भू–कर स्थायी रूप से नियम नहीं होता था तथा इसकी प्रतिशतता राज्य की वित्तीय आवश्यकताओं के अनुसार बदलती रहती थी। इसको उस वक्त बढ़ाया भी जा सकता था जब राजा को लड़ाई के लिए ज्यादा धन की आवश्यकता होती थी। इसी प्रकार, इसे उस वक्त घटाया भी जा सकता था जब फसल खराब हो जाती थी अथवा कोई प्राकृतिक आपदा आ पड़ती थी। यदि कोई भू–धारक कर देने से चूक जाता था तो उसकी जमीन कुछ विशेष समयावधि पश्चात् बेच दी जाती थी जो कि स्थान–स्थान तथा समय–समय के अनुसार अलग–अलग होती थी। राज्य राजस्व के बकाये पर ब्याज वसूला करते थे। घ्यातव्य है कि राज्य को भू–कर अदा न दिए जाने पर जमीन को जब्त कर लेने के उदाहरण अभिलेखों में मौजूद हैं। स्मृतियाँ कर अदा न करने वाले मालिकों को जमीन जब्त करने संबंधी कोई भी जिक्र नहीं करती हैं। यह भी ध्यान देने योगय है कि लोग ये सभी शासक को बदले में सुरक्षा देने के लिए अदा करते थे, जिससे राजा सभी संभावित खतरों से सुरक्षा प्रदान करता था।

प्राचीन भारत में भू–राजस्व प्रशासन के संबंध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि कम से कम बाद के समय में भू–राजस्व निर्धारण से पूर्व सभी जमीनों का एक तरीकेवार सर्वेक्षण किया गया था। अर्थशास्त्र इस बात की पुष्टि करता है। भू–राजस्व संग्रहकर्ताओं ने विभिन्न गाँवों को सबसे अच्छे (ज्येष्ठ), मध्यम दर्जे वाले (मध्यम) तथा निचली श्रेणी वाले (कनिष्ठ) के रूप में वर्गीकृत किया था। इस तरह जमीन के वर्गीकरण भी आगे फिर पुष्टि इस तथ्य से की गयी है कि अधिकारियों ने भू–राजस्व की अलग–अलग दरों का जिक्र किया है। स्पष्टतया, ये अलग–अलग दरे जमीन की गुणवत्ता की वजह से ही हो सकती है।

शासक अपनी आय का काफी हिस्सा खानों, जंगलों आदि से प्राप्त करते थे। राजाओं का धातुओं में कितना हिस्सा था इस बारे में इस अवधि के विद्वानों में काफी वैचारिक मतभेद है। मनु के अनुसार, राजा को राज्य में उत्पादित होने वाले धातुओं का आधा हिस्सा

मिलना चाहिए, जबकि विष्णु के अनुसार, खानों का सारा का सारा उत्पाद शासक को देय होता है। अर्थशास्त्र भी कहता है कि खाने राज्य के नियंत्रक में होती थीं जंगलों से भी राजा को पर्याप्त राजस्व मिलता था। जो लोग जंगलों से आय अर्जित करते थे उन्हें राजा को हिस्सा देना पड़ता था। मनु के अनुसार, पर्याप्त विचार–विमर्श के बाद ही शुल्कों तथा करो का निर्धारण किया जाना चाहिए ताकि राज्य को पर्याप्त राजस्व प्राप्त हो तथा कामगारों को पर्याप्त लाभ। मनु का कहना है, ''जैसे की जोंक, बछड़ा एवं मधुमक्खी थोड़ा–थोड़ा करके अपना भोजन लेते हैं उसी के अनुसार राजा को भी अपने राज्य में थोड़ी–थोड़ी मात्रा में वार्षिक कर प्राप्त करना चाहिए''। भू–कर एक–बटा–छह (1/6), एक बटा–आठ (1/8) अथवा एक–बटा–चार (1/4), जोकि सकल उत्पाद का हो, के रूप में होना चाहिए। मनु के अनुसार ही, ''पशुधन और स्वर्ण का राजा को एक बटा–पांचवां (1/5) हिस्सा लेना चाहिए''। उनके अनुसार, ऐसी कोई भी चीज नहीं थी जिसका कि राज्य अपने संसाधन बढ़ाने के लिए दोहन न करता हो। मनु के अनुसार, राजा को 'पेड़ों का, मांस, शहद, घी, इत्र, जड़ी–बूटियोंः मसालों, फूलों, जड़ो/कंदों व फलों, पत्तियों, गमले में आने वाली बूटियों, घासः बेंत, खाल की बनी (वस्तुओं), मिट्टी के बरतनों तथा पत्थर से बनी सभी (वस्तुओं)'' का एक– बटा–छठा (1/6) हिस्सा प्राप्त करना चाहिए।

कर संग्रहण कार्यतंत्र

इन करों के संग्रहण के हेतु कार्यतंत्र के बारे में हमे कोई व्यापक विवरण नहीं मिलता है। ज्यादा से ज्यादा हम जानते है कि भू–राजस्व अधिकारियों की एक अधिश्रमिक व्यवस्था कायम थी। विभिन्न अधिकारी गुण, एक दूसरे के अंतर्गत, ग्राम–समूहों की व्यवस्था देखते थे। ये अधिकारी अपने प्रभार वाले इलाकें में भू–राजस्व प्रशासन के लिए जिम्मेदार होते थे और इसके लिए उन्हें निर्धारित वेतन मिलता था। इन भू–राजस्व अधिकारियों को नियमानुसार भुगतान होता था।

एक गांव का मालिक– राजा के प्रतिदिन के खाने, पेय तथा ईधन का देय।

10 गांवों का मालिक– 1 कुल।

20 गांवों का मालिक– 5 कुल।

100 गांवों का मालिक– एक गांव का भू–राजस्व।

1000 गावों का मालिक– 1 कस्बे/नगर का भू–राजस्व।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि अधिकारियों को उनकी जिम्मेदारी के अनुसार ही वेतन मिलता था। इस प्रकार से 20 गांवों के मालिक को 10 गांवों के मालिक से 5 गुना ज्यादा आय होती थी। तथापि, यह स्पष्ट नहीं है कि कुल का क्या तात्पर्य है। संभवतः यह जमीन वह क्षेत्र होता था जो कि एक परिवार का भरण–पोषण करने के लिए पर्याप्त होता था।

भू–राजस्व व्यवस्था उपरोक्त करों के अतिरिक्त जिन पर कि राजा नियमित रूप से दावेदारी करता था, कुछ अन्य कर जैसे कि ''करा' एवं ''प्रतिभाग'' को भी राजा वसूलता था। इन करों की प्रकृति स्पष्ट नहीं है क्योंकि विभिन्न प्राधिकारियों ने उनको अलग–अलग तरीके से प्रतिपादित किया है। यह 'कर' शायद एक आवधिक कर था जिसको कि कृषि भूमि पर लगाया जाता था तथा जो अन्न के सामान्य हिस्से के ऊपर होता था। 'प्रतिभाग' एक तरह की भेंट होती थी जिसमें फल, फूल एवं कन्दमूल होते थे, जिसको कि राजा को प्रतिदिन दिया जाता था।

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि प्राचीन भारत में शासक लोगों से जबरन धन वसूलते थे जिसके अलग–अलग बहाने होते थे। किन्तु इन करों को लगाते वक्त शासकों से यह आशा की जाती थी कि वे सुनिश्चित करें कि जनता अपने हक के हिस्से से वंचित न हों।